International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-12-2023, Accepted: 07-01-2024, Published: 23-01-2024
Volume 10, Issue 1, 2024, Page No. 8-9

गेस्ट बना पिताः गिलिगडु

प्रीतिका एन
शोधार्थी, हिंदी, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केरल, भारत

सारांश
वर्तमान समय में निरंतर बदलाव का नाम ही समाज है। इस प्रकार निरंतर बदलते समाज में हर किसी व्यक्ति, वस्तु आदि का स्थान भी बदल रहा है। जो कल तक उपयोगी एवं सम्माननीय थे, वहीं आज अनुपयोगी एवं तिरस्कार के पात्र बन गए हैं। इसी तिरस्कार एवं अनुपयोगिता का दूसरा नाम है, वृद्ध समाज। जिन्हें हर क्षण अनुपयोगिता की कीमत चुकानी पड़ती है। इसी कशमकश, बेकारी, बदलते मूल्य, संस्कार व संस्कृति के कारण आज माता–पिता अवांछित से हो गए हैं। जिन्हें केवल बोझ समझ कर, छुटकारा पाने का प्रयास किया जाता है। आज बूढ़े माता–पिता अपने ही बच्चों के घर में पराए हो गए हैं। उनका मान सम्मान तो दूर, उनका होने न होने से भी किसी के कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसी जटिल परिस्थितियों में माता–पिता गेस्ट बनते जा रहे हैं। जिनकी किसी को विशेष आवश्यकता नहीं है। इसी विषम सामाजिक यथार्थ की लेखकीय अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है, समकालीन उपन्यास। चित्रा मुद्गल का गिलिगडु इस दिशा में महत्वपूर्ण एवं विचारनीय उपन्यास है।

मूल शब्दः गेस्ट, माता– पिता, अनुपयोगिता, अपसंस्कृति, गिलिगडु, परिवर्तनशील, औद्योगिकीकरण, सामाजिक व्यवस्था

वक्त परिवर्तनशील है। ठहराव और वक्त का संबंध रात और दिन की तरह है। वक्त न ठहरता है और न ठहराव वक्त है। एक दूसरे से अनभिज्ञ बिल्कुल ही पृथक। वक्त की यही विशेषता है कि, वह किसी के लिए नहीं रुकता है। चाहे इंसान के जीवन में कुछ भी हो जाए लेकिन वक्त रुकता नहीं है। इंसान कभी–कभी वहीं ठहर जाता है, परंतु वक्त रेत की भांति हाथों से फिसल जाता है। यही वक्त या समय का यथार्थ है। वक्त का इस प्रकार परिवर्तनशील होना जरूरी है, क्योंकि एक ही वक्त में जीना या ठहरना कुछ अप्रिय या अस्वस्थ सा प्रतीत होता है। लेकिन वक्त का परिवर्तनशील व्यक्तित्व हर किसी के लिए एक जैसा नहीं होता। इंसान भविष्य के प्रति इच्छुक एवं आकांक्षी है। वह अपने संपूर्ण जीवन काल में वक्त के साथ कदम मिलाकर या वक्त से पहले सब कुछ हासिल करना चाहता है। लेकिन हर एक इंसान के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह हर एक उलझन, भाग– दौड़ से मुक्त होकर ठहरना चाहता है। अपने सुवर्ण अतीत में जीना एवं सुखद अतीत का स्मरण कर उसी में ठहरना एवं शांत चित होकर जीवन व्यतीत करना चाहता है। यह हर किसी के जीवन की सच्चाई है, इसी सच्चाई या जीवन के ठहराव को ही वृद्धावस्था कहा जाता है। "वार्धक्य कोई अभिशाप नहीं, बल्कि वह जीवन की चरम स्थिति है। अर्थात जीवन के विकास की चरमावस्था है, वृद्धावस्था। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का कहना है कि 'इस अवस्था में लोगों के सभी भाव रस के रूप में परिणत होकर आनंदमय हो जाते हैं।' युवावस्था में प्रायः आडंबरप्रियता और प्रदर्शनप्रियता को देखा जा सकता है लेकिन वृद्धावस्था में यह सब नहीं रह जाते। वृद्धावस्था का सच्चा आनंद आत्मसंतोष है। जिन्हें भविष्य की कोई चिंता नहीं रहती वे ही वृद्ध हैं।"[1] इससे यही तात्पर्य निकलता है कि, भले ही वक्त परिवर्तनशील क्यों न हो लेकिन वृद्धावस्था परिवर्तनशील नहीं है। क्योंकि वृद्ध अपने स्वर्णिम अतीत में रहना अधिक पसंद करते हैं। मृत्यु की प्रतिक्षा कर रहे इन वृद्धों के लिए भविष्य अंधकार के समान है। जिसकी वह चिंता करें तो क्यों करें? क्योंकि भविष्य है, लेकिन वह वृद्धों के लिए नहीं है।

वृद्ध भविष्य से वंचित है। अतीत गुजर चुका है। वह चाहकर भी वक्त के साथ आगे नहीं बढ़ पाते। ऐसे में वह समाज के लिए अनुपयोगी बनने लगते हैं। न वे इतने सक्षम होते हैं कि परिवार और समाज की जरूरत को पूरा कर सके न ही उनमें कुछ करने की इच्छा शक्ति शेष है। वे करें तो क्या करें? इसी असमंजस्य में वे समाज और परिवार के लिए बेकार निकम्मे वस्तु बन जाते हैं, जिसकी कोई उपयोगिता नहीं है।" प्रायः यह देखा जाता है कि जब तक व्यक्ति परिवार के लिए कमाने का यंत्र है तब तक उसकी चलती है लेकिन जैसे ही उसका शरीर उसका साथ देना छोड़ देता है वैसे ही परिवार के सदस्यों के लिए वह एक 'बेकार चीज' बन जाता है। ऐसे में उसका अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है।"[2]

इन परिस्थितियों ने वृद्ध समाज की संपूर्ण काया ही पलट दी है। यह केवल इसलिए नहीं क्योंकि वह वक्त के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकते बल्कि इसके कारण अनगिनत हैं। कहीं संस्कारों में आए बदलाव है तो कहीं मूल्य परिवर्तन। आधुनिक जीवन, अपसंस्कृति, मूल्यहीनता, पीढ़ी संघर्ष, स्वर्णिम अतीत, वृद्धावस्था की बेबसी आदि ने आज वृद्ध जीवन को समस्या ग्रस्त बना दिया है। नगरीकरण, औद्योगिक क्रांति, पूंजीवाद आदि के चलते इंसान हर चीज को उससे होने वाले फायदे –नुकसान के हिसाब से तोलता है। ऐसे में संबंध, रिश्ते, आदर्श मूल्य, संस्कार आदि बिकाऊ एवं प्रदर्शनकारी वस्तु मात्र रह गए हैं। "औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में भी व्यापक परिवर्तन आया है जिसके कारण सामूहिक मान्यताओं ने व्यक्तिवाद के रूप में अपना स्थान ग्रहण किया है। संयुक्त परिवार का विघटन जारी है। एकाकी परिवारों का बोलबाला है। परिवर्तनों का गम्भीर परिणाम सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तनों के कारण सामाजिक मानव आज मशीनी मानव बन चुका है जो अपने स्वास्थ्य की बगैर परवाह किये ही दिन–रात धनोपार्जन में जुटा हुआ है। भौतिकवाद की अँधी गली में मानव का परिवार एवं स्वास्थ्य निरन्तर खोता चला जा रहा है। इसका उसे आभास तक नहीं होता है। आभास तब होता है जब समय हाथ से गुजर जाता है, और वह अपने आपको समय के आगे ठगा सा महसूस करता है। सामाजिक ढाँचे एवं उसके प्रकार्यों में हुए परिवर्तनों के कारण सामाजिक रीति–रिवाजों, मूल्यों, नीतियों, परम्पराओं में जटिलता बढ़ गई है जिसके परिणामस्वरूप वृद्ध व्यक्तियों की स्थिति में गिरावट आई है।"[3]

इस प्रकार बिगड़ते पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था में वृद्ध जीवन तिरस्कृत एवं उपेक्षित बन गया है। जो एक समय में समाज के पालक, नियामक हुआ करते थे, आज दर –दर के ठोकरे खाने के लिए मजबूर है। जिन बच्चों का जीवन सुधारने के लिए दिन– रात मेहनत कि, उन बच्चों के लिए आज माता–पिता पराए हो गए हैं। मां–बाप और बच्चों रूपी एकाकी परिवारों में आज दादा–दादी, नाना –नानी आदि अवांछित वस्तुएँ मात्र है। जिनका स्थान आज गेस्ट या अतिथि जितना ही रह गया है। कभी–कभी अतिथियों का सम्मान होता है, घर के कुत्तों का भी ध्यान रखा जाता है लेकिन घर आए मेहमान रूपी माता–पिता यदि अधिक दिन ठहर गए या घर को अपना समझने लगे तो उन्हें तिरस्कार, अपमान आदि की कडुवी घुट पीनी पड़ती है। गिलिगडु उपन्यास समाज के इस कड़वी सच्चाई का लेखकीय दस्तावेज है।"उनका मानना है कि इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं–एक टॉमी, दूसरा अवकाश–प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसवत मजबूत है। उसकी इच्छा–अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है। कलंकित होकर अक्षत–चंदन क्यों चढ़ाएं?"[4]

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के कल से ही वृद्धों पर चर्चाएं हुई है। लेकिन उस समय समाज का वृद्धों के प्रति रवैया अलग था। उनका सम्मान कर उनके अनुभवों का सदुपयोग किया जाता था। लेकिन समाज धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगा, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगी। खासकर समकालीन उपन्यास साहित्य जो जीवन के नंगे यथार्थ की झांकी है वृद्धावस्था के हर एक पक्ष एवं कष्टों को कागज पर उतरने का सफल प्रयास करता रहता है। इस दृष्टि से चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित गिलिगडु उपन्यास भी अत्यंत विचारणीय एवं मार्मिक है। "गिलिगडु उपन्यास में चित्रा जी ने वृद्धों की बेचारगी संवेदनशीलता और जीवन शैली को विस्तार दिया है। पुस्तक के फ्लैप पर लिखी इबारत भी इस उपन्यास की आधारभूमि की ओर संकेत करता है। 'गिलिगडु' चित्रा जी का आकार में छोटा परंतु संवेदनशीलता में कहीं गहरा उपन्यास है। इस उपन्यास में सेवानिवृत्त बुजुर्ग की एक रेखीय कहानी नहीं, जीवन के रंग बहुआयामी रूपों में उभर कर आये हैं।"[5] इस बहुआयामी रंग के साथ–साथ बदलते समाज में किस प्रकार सगे माता–पिता ही गेस्ट बन गए हैं, इस जटिल सामाजिक बदलाव की सहज एवं मर्मस्पर्शी चित्रण भी हुआ है। पत्नी के मृत्यु के उपरांत कानपुर से दिल्ली बेटे के घर रहने आए जसवंत सिंह के लिए बेटे का घर पराया हो जाता है या उन्हें केवल गेस्ट की उपाधि देकर बालकनी में उनका प्रबंध कर, पराया कर दिया जाता है। "बाबू जसवंत सिंह उस समय हैरान हो आए जब उन्होंने नरेंद्र के दफ्तर के ड्राइवर को उनका सामान कमरे में तब्दील की गई बॉलकनी में रखते देखा।

दबी जबान से उनके आपत्ति प्रकट करने पर कि रात उन्हें कई दफे पेशाब करने के लिए उठना पड़ता है और इस बालकनी में उन्हें दिक्कत होगी–नरेंद्र ने चौट उन्हें सफाई पकड़ाई। बालकनी में लगे हुए सहन में ही तो कामन टॉयलेट है। उनकी जरूरत कमोड है और कमोड वहां है। बच्चों के कमरे में कंप्यूटर जैसी कीमती चीजे रखी हुई हैं।...लगा कि वे एकाएक कबाड़ के अंबार के ऊपर बेमुरव्वत से उठकर फेक दिए गए हों।"[6] इस प्रकार आज वृद्ध अपने ही संतानों के घर में गेस्ट बन गए हैं। ऐसे गेस्ट जिनके आने से किसी को प्रसन्नता नहीं होती। बचा कुछा खिलाकर उन्हें परे हटा दिया जाता है। अच्छी एवं स्वस्थ देखरेख की महत्वपूर्ण उम्र में उन्हें अपने इच्छाओं का गला घोटने पड़ता है। जिन बच्चों के लिए जवानी में उन्होंने अपनी इच्छाओं को त्याग दिया था, उन्हीं बच्चों के घर में गेस्ट बनाम पिता अपनी इच्छाएँ प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि वह बाहरवाला है।"वे अनिच्छा प्रकट करने की औकात नहीं रखते। इच्छा– अनिच्छा घरवालों की होती है।घर में आकर रहने वालों की नहीं।... जवाब में नरेंद्र के लंबे– चौड़े भाषण ने बाबू जसवंत सिंह को नसीहत पिलाई कि आइंदा वे अपनी पसंद की गुंजाइश इस घर में न ढूंढे तो बेहतर है।"[7]

आज के समाज की यही वास्तविकता है की वृद्ध नाकाम निकम्मे बेकार वस्तु है, जिनकी उपयोगिता न के बराबर है। प्रतिदिन अपमान एवं तिरस्कार सहने के लिए मजबूर वृद्ध समाज के लिए 'गेस्ट बनाम पिता' रूपी नवीन सांस्कृतिक बदलाव कम दिक्कतदाई नहीं है। परिवर्तन आवश्यक है। समाज की उन्नति परिवर्तन से ही संभव है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था समाज के कई श्रेष्ठ बदलावों का कारण बना है। लेकिन जैसे सिक्के के दो पहलू होते हैं उसी भांति परिवर्तन के भी दुष्परिणाम है। जो समाज के निर्बल, मजबूर लोगों को भुगतनी पड़ती है। गेस्ट बनाम पिता जैसी विकृत संस्कृतियाँ इसी भुगतान के जीवंत प्रस्तुति है।

निष्कर्ष

इस दृष्टि से देखा जाए तो गिलिगडु उपन्यास अपने आप में अत्यंत विशिष्ट है। जसवंत सिंह, कर्नल स्वामी, श्रीवास्तव दंपति आदि के माध्यम से वृद्ध जीवन के कई पक्षों को यह सामने रखता है। इन्हीं पक्षों में एक है, सामाजिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप वृद्ध समाज को होने वाली गंभीर समस्याएँ, जिसकी ओर यह उपन्यास इशारा करता है, जो कहीं न कहीं गेस्ट बनाम पिता संस्कृति का परिणाम है। "जब किन्ने देर शाम तक नहीं लौटा तो रामदयाल को विश्वास हो गया कि बेटे के घर में माँ – बाप के लिए जगह नहीं है, बल्कि गैरेज में है।..."[8]

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. शिवकुमार राजौरिया, शुभाशंसा से, वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, 2017
2. डॉ. शिवकुमार राजौरिया, शुभाशंसा से, वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, 2017
3. बृन्दा सिंह, वृद्धावस्था जीवन की संध्याबेला, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर, 2009, पृ.2
4. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृ.96
5. डॉ. अर्चना मिश्रा, चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में युग चिंतन, भारतीय पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2018. पृ. 36
6. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृ. 56–57
7. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृ. 39–40
8. रवींद्र वर्मा, निन्यानबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृ. 199